अथ तुदादिगणः

तुद व्यथने 1

व्याख्याः १ तुद् (पीड़ा पहुँचाना)– यह धातु तथा इसके आगे 'लिप्' धातु तक दश धातुएं स्वरितेत् होने से उभयपदी हैं। अनुदात्तोपदेश धातुओं में परिगणन होने से 'तुद्' धातु अनिट् है।

तुदादिभ्यः शः 3.1.77

शपोपवादः। तुदति, तुतोद, तुतोदिथ। तुतुदे। तोत्ता। अतौत्सीत्, अतुत्त।

व्याख्याः तुदादि गण की धातुओं से 'श' प्रत्यय हो (कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे रहते)।

शप इति– यह 'श' प्रत्यय शप् का बाधक हैं यद्यपि 'शप्' और 'श' दोनों का 'अ' कार ही शेष रहता है और दोनों ही शित् भी हैं, तथापि इनमें थोड़ा सा अन्तर है–शप् पित् है, अतः उसके परे रहते गुण हो जाता है और 'श' पित् नहीं है, अतः 'सार्वधातुकमपित्' से सह ङिद्वत् हो जाता है जिससे उसके परे रहते गुण नहीं होता और ङिन्निमित्तक संप्रसारण आदि कार्य हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त 'शप्' प्रत्यय पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्–पितौ' से अनुदात्त होता है और 'श' 'आद्युदात्तश्च' से उदात्त। इस प्रकार इन दो का स्वर में भी भेद पड़ता है।

तुदति– लट् में 'तुद् ति' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से 'श' प्रत्यय होने पर उसके अनुबन्ध शकार का लोप होकर सिद्ध होता हैं यहाँ अपित् सार्वधातुक होने के कारण 'श' के ङिद्वत् हो जाने से लधूपध गुण का निषेध हो जाता है।

तुद्ते–यह रूप लट् आत्मनेपद में पूर्ववत् सिद्ध होता है।

तुतोद– लिट् के तिप् को ण् आदेश होने पर द्वित्व, अभ्यास कार्य और उत्तरखण्ड में गुण होकर रूप सिद्ध हुआ।

तुतोदिथ–थल् में द्वित्व, अभ्यासकार्य, गुण और इट् होकर रूप सिद्ध हुआ। तुद धातु न तो अजन्त है और न अकारवान्, अतः भारद्वाज नियम तो यहाँ लगता नहीं। तब क्रादिनियम से नित्य इट् होता है।

तुतुदे–लिट् आत्मनेपद में एश् आदेश, द्वित्व और अभ्यास कार्य होने पर रूप बनता है। 'असंयोगाद् लिट् कित् से लिट् के कित् होने के कारण यहाँ गुण नहीं होता।

तोत्ता–लुट् में तास्, तिप् को डा आदेश, टि का लोप,लधूपध गुण और दकार को चर्त्व तकार होकर रूप सिद्ध होता है।

ऌट्–तोत्स्यति, तोत्स्यते। लोट्–तुदतु, तुदताम्। वि० लि०–तुदेत्, तुदेत। आ० लि०–तुद्यात, तुत्सीष्ट।

यहाँ 'तुदेत्' में 'श' के अकार से पर होने के कारण 'या' को 'अतो येयः' से 'इय्' होता है और 'तुदेत' में 'श' के अकार और सीयुट् के इकार को गुण होता है।

अतौत्सीत्–लुङ् परस्मैपद में 'अतुद् स् त्' इस दशा में हलन्तलक्षणा वद्धि, ईट् आगम अपक्त तकार को और दकार को चर् तकार होकर रूप सिद्ध होता है।

शेष रूप–

प्र० अतौत्तम्, अतौत्सुः।

म० अतौत्सीः, अतौत्तम, अतौत्त।

उ० अतौत्सम्, अतौत्स्व, अतौत्स्म।

यहाँ ताम् तम्, और त झल् परे मिल जाने से 'झलो झलि' से सिच् के सकार का लोप हो जाता है।

अतुत्त लुङ् आत्मनेपद में 'अतुद स् त' इस दशा में 'झलो झलि' से सिच् के सकार का लोप होकर रूप सिद्ध होता है।

शेष रूप–

प्र० अतुत्साताम्, अतुत्सत।

म० अतुत्थाः, अतुत्साथाम्, अतुद्ध्वम्।

उ० अतुत्सि, अतुत्स्वहि, अतुत्स्महि।

लृङ्–अतोत्स्यत्, अतोत्स्यत।

णुद प्रेरणे 2

नुदति, नुदते। नुनोद। नोत्ता।

व्याख्या: नुद् (प्रेरणा करना)–यह धातु णोपदेश है, अतः उपसर्ग के रकार से पर होने पर नकार को णकार हो जाता है–प्रणुदति। अनुदात्तोपदेशों में परिगणित होने से यह भी अनिट् हैं इसके रूप 'तुद्' के समान ही बनते हैं।

उपसर्ग के योग में –अपनुदति–दूर करता है। विनुदति–हटाता है। ण्यन्त में विनोदयति–बहलाता है।

भ्रस्ज पाके 3

'ग्रहि -ज्या-' इति सम्प्रसारणम्, सस्य श्चुत्वेन शः, शस्य जश्त्वेन जः-भज्जति, भज्जते।

व्याख्या: भ्रस्ज् (भूनना)–यद्यपि मूल में 'पाक' अर्थ कहा गया है, परन्तु यहाँ ओदनपाकादि का पाक विवक्षित नहीं, अपितु चने आदि दानों का 'भूनना' रूप विशेष पाक अभिप्रेत है।

यह धातु भी पूर्ववत् अनिट् है।

भज्जति, भज्जते–लट् में 'भ्रस्ज् ति' और 'भ्रस्ज् त' इस दशा में श प्रत्यय होने पर उसके ङित् होने के कारण 'ग्रहिज्या–' इत्यादि सूत्र से रकार को ऋकार संप्रसारण तथा अकार का पूर्वरूप, सकार को 'स्तोः श्चुना श्चुः' से शकार आदेश और शकार को, झश् जकार परे से होने 'झलां जश् झशि' से स्थानेन्तरतमः से जश् जकार होकर उक्त रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार –

प० प्र० भज्जतः, भज्जन्ति।

म० भज्जसि, भज्जथः, भज्जथ।

उ० भज्जामि, भज्जावः, भज्जामः।

आ० प्र०– भज्जते, भज्जेते, भज्जन्ते।

म० भज्जसे, भज्जेथे, भज्जध्वे।

उ० भज्जे, भज्जावहे, भज्जामहे।

ये रूप भी सिद्ध होते हैं।

भ्रस्जो रोपधयो रम् अन्यतरस्याम् 6.4.47

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने 'रम्' आगमो वा स्याद्, आर्धधातुके। मित्वाद् अन्त्याद् अचःपरः। स्थानषष्ठी-निर्देशाद् रोपधयोर्निवत्तिः। बभर्ज, बभर्जतुः; भर्जिथ-बभर्ष्ठ। बभ्रज्ज, बभ्रज्जतुः; बभ्रज्जिथ। 'स्कोः-' इति सलोपः;

'व्रश्च=' इति षः बभ्रष्ठ।

बभज-बभ्रज्ज। भर्ष्टा-भ्रष्टा। भर्क्ष्यति, भ्रक्ष्यति।

व्याख्याः भ्रस्ज इति–भ्रस्ज धातु के रेफ और उपधा दोनों के स्थान 'रम्' का आगम हो विकल्प से, आर्धधातुक परे रहने पर।

'रम्' का केवल 'र्' रहता है, अकार और मकार इत् हैं

मित्त्वादिति–मित् होने के कारण 'रम्' अन्त्य अच् से पर होता है।

स्थानषष्ठीति–सूत्र में 'रोपधयोः' यहाँ स्थानषष्ठी कही गई है। अतः 'रम्' के आगम होने पर और आगम के मित्रवत् किसी के हटाये बिना होने से भी रेफ और उपधा सकार की निवत्ति हो जाती है। अन्यथा स्थानषष्ठी का उच्चारण व्यर्थ हो जाता।

बभर्ज–लिट् में 'भ्रस्ज् अ, इस दशा में प्रकृत सूत्र से 'रम्' आगम रकारोत्तवर्ती अकार के आगे हुआ और रेफ तथा उपधा सकार की निवत्ति हो गई। तब 'भर्ज् अ' इस स्थिति में द्वित्व और अभ्यास कार्य होकर रूप बना।

बभर्जतुः– अतुस् में पूर्ववत् रम् आगम और रेफ तथ उपधा की निवत्ति हो गई। तब 'भर्ज्' को द्वित्व और अभ्यासकार्य होकर रूप बना।

बभर्जिथः– तास में नित्य अनिट् होते हुए अकारवान् होने के कारण भारद्वाज नियम से वैकल्पिक इट होने पर इट्, पक्ष में यह रूप बनता है।

बभर्ष्ठ–इडभाव पक्ष में झल् परे मिल जाने से 'व्रश्च–भ्रस्ज–' इस सूत्र से जकार को षकार तथा थकार को ष्टुत्व ठकार होकर उक्त रूप सिद्ध होता है।

इन प्रयोगों में 'ग्रहिज्या–' से संप्रसारण नहीं होता, क्योंकि वह कित् ङित् परे रहते प्रवत्त होता है, यहाँ लिट् के प्रत्यय कोई भी कित् ङित् नहीं। संयोग होने से 'अतुस्' आदि अपित् लिट् भी 'असंयोगाल्लिट् कित्' से कित् नहीं होता।

बभ्रज्ज–'रम्' के अभावपक्ष में 'भ्रस्ज्' को द्वित्व होता है, अभ्यासकार्य, सकार को श्चुत्व शकार और शकार का जश्त्व जकार होकर रूप सिद्ध होता है।

बभ्रज्जतुः– रमभाव पक्ष के अतुस् में पूर्ववत् रूपसिद्धि होती है।

बभ्रज्जतुः–'रमभाव पक्ष में भारद्वाज नियम से वैकल्पिक इट् होने पर इट्पक्ष में पूर्ववत् रूपसिद्धि होती है।

बभ्रष्ट–रमभाव के इडभाव पक्ष में संयोगादि होने से सकार को 'स्कोः संयोगाद्योः–' से लोप, जकार को 'व्रश्चभ्रश्ज–' से षकार और थकार को ष्टुत्व ठकार होकर रूप सिद्ध होता है।

इस प्रकार लिट् में सर्वत्र 'रम्' के विकलप से दो दो रूप बनते हैं। थल् में भारद्वाज नियम के इट् विकल्प से चार रूप बन जाते हें।

न केवल लिट् में ही, अपितु सर्वत्र आर्धधातुक में दो दो रूप बनते हैं।

बभर्ज, बभ्रज्जे–लिट् के आत्मनेपद में 'रम्' के विकल्प से दो रूप बनते हैं।

ध्यान रहे रम् पक्ष में सकार का लोप हो जाता है और उसके अभाव में सकार को शकार तथा उसको जकार होकर दो जकार हो जाते हैं। सर्वत्र रूपों में यही प्रकार मिलेगा।

भर्ष्टा–लुट् में तास्–प्रत्यय आने पर तथा तिप् के स्थान में डा उसका आ, और टि का लोप होने पर 'भ्रस्ज् ता' इस दशा में 'रम्' आगम तथा रेफ और सकार का लोप हो जाता है, तब 'भर्ज् ता' इस स्थिति में 'व्रश्चभ्रस्ज–' से जकार को षकार और तकार को ष्टुत्व टकार होकर रूप बनता है।

भ्रष्टा–'रम्' अभावषक्ष में 'स्कोः संयोगाद्योः' से सकार का लोप, जकार को षकार और तकार की ष्टुत्व टकार्र होने पर रूप सिद्ध होता है।

भर्क्ष्यति–लृट् में 'स्य' आने पर रम् आगम के साथ रेफ और सकार का लोप हो जाता है। तब 'भज्स्यति' इस

स्थिति में जकार को षकार, उसको 'षढोः कः सि' से ककार और ककार कवर्ग से पर होने के कारण प्रत्यय 'स्य' के सकार को मूर्धन्य षकार तथा क ष संयोग से क्ष होकर रूप बना।

भ्रक्ष्यति–'रम्' अभावपक्ष में 'भ्रस्ज् स्यति' इस दशा में सकार का संयोगआदि लोप, जकार को षकार, उसको ककार, उससे पर सकार को मूर्धन्य षकार और क ष के संयोग से क्ष होकर रूप सिद्ध हुआ।

लोट्–भज्जतु, भज्जताम्। लङ्–अभज्जत्, अभज्जत।वि० लि० भज्जेत्, भज्जेत।

(वा) क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन।

भज्यात, भज्यास्ताम्, भज्यासुः। भर्क्षीष्ट-भ्रक्षीष्ट। अभार्क्षीद्-अभ्राक्षीत्। अभर्ष्ट-अभ्रष्ट।

व्याख्याः कित् और ङित् आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते 'रम्' आगम को बाधकर संप्रसारण हो पूर्वविप्रतिषेध से।

भज्ज्यात् –आशीर्लिङ् में 'भ्रस्ज् यास् त्' इस दशा में 'किदाशिषि' से यासुट् कित् है। यहाँ संप्रसारण भी प्राप्त है और 'रम्' आगम भी। 'रम्' आगम यद्यपि 'विप्रतिषेध परं कार्यम्' के बल से पर होने के कारण बलवान् है, तथपि प्रकृत वार्तिक से संप्रसारण पहले हो जाता है तब सकार के स्थान में श्चुत्व शकार और उसको जश्त्व जकार होकर रूप सिद्ध होता है।

भज्ज्यास्ताम्, भज्ज्यासुः – इनकी सिद्धि का प्रकार प्रायः भज्ज्यात् के समान है।

भर्क्षीष्ठ, भ्रक्षीष्ट– ये दो रूप आशीर्लिङ् आत्मनेपद में सीयुट् आने पर 'भर्क्ष्यति' और 'भ्रक्ष्यति' के समान सिद्ध होते हैं।

अभार्क्षीत्–लुङ् के परस्मैपद में अभ्रस्ज् स त्' इस दशा में 'रम्' आगम और रेफ तथा सकार के लोप होने पर 'अ भर्ज् स् त' यह स्थिति बनती है। इस में हलन्तलक्षणा वद्धि, जकार का षकार, षकार को ककार, तब सिच् के सकार को मूर्धन्य षकार और अपक्त तकार की इट् होकर रूप सिद्ध होता है।

अभ्राक्षीत– 'रम्' अभाव पक्ष में 'अभ्रस्ज् स् त्' इस दशा में सकार का संयोगादि लोप, हलन्तलक्षणा वद्धि, जकार को षकार ओर उसकी ककार सिच् के सकार को मूर्धन्य ईट् होकर रूप सिद्ध हुआ।

शेष रूप (रम् पक्ष में)–

प्र० अभार्ष्टाम्, अभार्क्षुः।

म० अभार्क्षाः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट।

उ० अभार्क्षम्, अभार्क्ष्व, अभार्क्ष्म।

(रम् अभाव पक्ष में)

प्र० अभ्राष्टाम्, अभ्राक्षुः।

मअभ्राक्षीः, अभ्राष्टम्, अभ्राष्ट।

उ० अभ्राक्षम्, अभ्राक्ष्व,अभ्राक्ष्म।

अभर्ष्ट–लुङ् आत्मनेपद में 'अभ्रस्ज् स् त' इस दशा में 'रम्' आगम और रेफ तथा उपधा सकार के लोप होने पर, 'अभर्ज् स् त' इस दशा में 'झलो झलि' से सिच् का लोप, जकार को षकार और तकार को ष्टुत्व टकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

अभ्रष्ट–'रम्' अभावपक्ष में प्रथम सकार का संयोगादिलोप, द्वितीय सकार का 'झलो झलि' से लोप, जकार को षकार और तकार को ष्टुत्व टकार होकर रूप बना।

आत्मनेपद के शेष रूप (रम् पक्ष)–

प्र० अभर्क्षाताम्, अभर्क्षत।

म० अभर्ष्ठाः, अभर्क्षाथाम्, अभर्ढ्वम्।

उ० अभर्क्षि, अभर्क्ष्वहि, अभर्क्ष्महि।

(रम् अभाव पक्ष में)

प्र० अभ्रक्षाताम्, अभ्रक्षत।

म० अभ्रष्टाः, अभ्रक्षाथाम्, अभ्रढ्वम।

उ० अभ्रक्षि, अभ्रक्ष्वहि, अभ्रक्ष्महि।

लृङ् में –अभर्क्ष्यत्–अभ्रक्ष्यत्, अभर्क्ष्यत, अभ्रक्ष्यत।

कृष विलेखने 4

कृषति, कृषते। चकर्ष, चकृष।

व्याख्याः कृष् – (हल चलाना, खींचना, स्वरितेत् उभयपदी) –अनुदात्तोपदेश धातुओं में परिगणित होने से यह धातु अनिट् है।

कृषति, कृषते–लट् में श। प्रत्यय होने पर उसके अपित् होने से ङिद्वत् होने के कारण गुण नहीं हुआ।

चकर्ष– लिट् में तिप् णल्, द्वित्व, अभ्यास ऋ को अत् आदेश, हलादि शेष उत्तर खण्ड के ऋकार को गुण होकर रूप सिद्ध हुआ।

चकृषे–आत्मनेपद में ऋ को अत् आदेश, हलादि शेष उत्तर खण्ड के ऋकार कोगुण होकर रूप सिद्ध हुआ।

चकृषे– आत्मनेपद में 'ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन' से कित्व पहले हो जाने से गुण न हुआ।

शेष रूप–

प० प्र० चकृषतुः, चकृषुः।

म० चकर्षिथ, चकृषथुः, चकृष,

उ० चकर्ष, चकृषिव, चकृषिम।

यहाँ वलादि प्रत्ययों में क्रादिनियम से नित्य इट् हुआ।

आ० प्र० चकृषतुः चकृषुः।

म० चकृषिषे, चकृषाथे, चकृषिध्वे,

उ० चकृषे, चकृषिवहे, चकृषिमहे।

अनुदात्तस्य च-ऋदुपघस्यान्यतरस्याम् 6.1.59

उपदेशेनुदात्तो य ऋदुपधः, तस्य 'अम्' वा स्याद् झलादौ अकिति। क्रष्टा-कर्ष्टा। कृक्षीष्ट।

व्याख्याः उपदेश में जो ऋदुपद्य धातु अनुदात्त हो, उसको विकल्प से अम् का आगम हो कित्–भिन्न झलादि प्रत्यय परे रहते। लुट् में 'कृष् ता' इस दशा में प्रकृत सूत्र से 'अम्' आगम हो जाता है, क्योंकि यहाँ कृष धातु उपदेश में अनुदात्त है और उसकी उपधा ह्रस्व ऋकार भी है तथा झलादि प्रत्यय तास् परे है वह कित्भिन्न भी है। अतः मित् होने से 'अम्' आगम ऋकार के आगे हो गया। तब 'कृ अ ष् ता' ऐसी स्थिति बन जाने पर ऋकार को यण् रकार तथा तकार को ष्टुत्व टकार होकर क्रष्टा रूप बन गया।

कर्ष्टा–'अम्' के अभावपक्ष में 'कृष् ता' इस दशा में आर्धधातुक गुण और तकार को ष्टुत्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

इस प्रकार अम्विकल्प से लुट् में दो दो रूप सिद्ध होते हैं।

लृट् में भी लुट् के समान दो दो रूप बनते हैं। क्रक्ष्यति–कर्क्ष्यति, क्रक्ष्यते। कर्क्ष्यते।

लोट्–कृषतु, कृषताम्। लङ्–अकृषत्, अकृषत। विधिलिङ्–कृषेत्, कृषेत। प०आ० लि० –कृष्यात्।

कृक्षीष्ट–आशीर्लिङ् आत्मनेपद में 'कृष् सी स् त' इस दशा में षकार को 'षढोः कः सि' से ककार और दोनों सकारों को मूर्धन्य आदेश, तकार को ष्टुत्व टकार होकर रूप सिद्ध हुआ। यहाँ 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' इससे लिङ् के कित् हो जाने से 'अम्' नहीं हुआ और न गुण ही।

शेष रूप–

प्र० कृक्षीयास्थाम्, कृक्षीरन्।

म० कृक्षीष्टाः, कृक्षीयास्थाम्, कृक्षीध्वम।

उ० कृक्षीय, कृक्षीवहि, कृक्षीमहि।

(वा) स्पश-मश-कृष -तष-दपां च्लेः सिज्वा वाच्यः।

अक्राक्षीत्-अकार्क्षीत। अकृष्ट, अकृक्षाताम्, अकृक्षत। क्सपक्षे-अकृक्षत, अकृक्षाताम्, अकृक्षन्त।

व्याख्याः (वा) –स्पश्, मश्, कृष् तप् (तप्त होना) और दप् (घमंड करना) धातुओं से पर 'च्लि' को 'सिच्' आदेश हो।

कृष धातु अनिट् और शलन्त है, अतः 'च्लि' को 'शल इगुपधाद् अनिटः क्सः' इस सूत्र से 'क्स' आदेश प्राप्त था, इस को बाधकर प्रकृत वार्तिक से सिच् आदेश विकल्प से होता है। सिच् पक्ष में 'अम्' विकल्प होता है। सिजभाव पक्ष में 'क्स' होता है। इस प्रकार लुङ् परस्मैपद में तीन–तीन रूप सिद्ध होते हैं।

सिच् पक्ष में (अम् आगम होने पर) अक्राक्षीत्, (अम् अभाव में) अकार्क्षीत्, यहाँ हलन्तलक्षणा वद्धि होती है, क्स पक्ष में –अकृक्षत। 'क्स' के कित् होने से यहाँ 'अम्' आगम नहीं होता।

अकृष्ट– लुङ् आत्मनेपद 'त' में सिच् पक्ष में सिच् के सकार का 'झलो, झलि' से लोप और तकार को ष्टुत्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

अकृक्षाताम्–'आताम्' में अकृष् स् आताम्' इस स्थिति में 'षढोः कः सि' से षकार को ककार और उससे पर सकार को मूर्धन्य होकर रूप सिद्ध होता है।

अकृक्षत– 'झ' में 'अत्' आदेश ष को क और स को ष होकर रूप सिद्ध हुआ।

शेष रूप–

म० अकृष्ठाः, अकृक्षाथाम्, अकृड्ढ्वम्।

उ० अकृक्षि, अकृक्ष्वहि, अकृक्ष्महि।

यहाँ 'लिङ्सिचावार्तमनेपदेषु' से सिच् के कित् होने से अम् नहीं हो पाता।

अकृक्षत्–यह भी क्स पक्ष का 'आताम्' में रूप है। 'अकृष् स आताम्' इस दशा में 'क्सस्याचि' से क्स के अकार का लोप होजाता है, तब भकार को ककार और सकार को मूर्धन्य षकार होकर रूप बनता है।

ध्यान रहे सिच् पक्ष और क्स पक्ष दोनों के आताम् का रूप एक समान बनता है, पर प्रक्रिया में भेद है।

अकृक्षन्त–क्स पक्ष में झ में 'अकृष् स झ' इस दशा में अकार से पर होने के कारण 'आत्मनेपदेष्वनतः' की प्रवत्ति नहीं होती, तब 'झोन्तः' से 'झ्' की 'अन्त्' आदेश हो जाता है। तदनन्तर 'कसस्याचि' से क्स के अकार का लोप होने पर षकार को ककार और सकार को मूर्धन्य षकार होकर उक्त रूप सिद्ध होता है।

शेष रूप–

म० अकृक्षथाः, अकृक्षाथाम्, अकृड्ढ्वम।

उ० अकृक्षि, अकृक्षावहि, अकृक्षामहि।

सिच और क्स पक्ष के कई रूप समान बनते हैं, पर उनकी प्रक्रिया में भेद है।

ऌङ्–अक्रक्ष्यत्–अकर्क्ष्यत, अक्रक्ष्यत्, अकर्क्ष्यत।

उपसर्ग के योग में –

विकृषति– दूर ले जाता है। निष्कृषति– सार निकालता है।

मिल संङ्गमे 5

मिलति, मिलते। मिमेल। मेलिता। अमेलीत्।

व्याख्याः मिल् (मिलना)– यह धातु अनुदात्तोपदेश धातुओं में परिगणित न होने से सेट् हैं इसके रूप सरल हैं।

सम् उपसर्ग के योग में इस धातु का 'बहुतों का इकट्ठा होना' अर्थ हो जाता है–सम्मिलित।

मुच्लृ मोचने 6

व्याख्याः मुच् (छोड़ना)– यह धातु अनुदात्तोपदेश धातुओं में परिगणित होने से अनिट् है।

शे मुचादीनाम् 7.1.59

मुच्-लिप्-विद्-लुप्-खिद्-पिशां 'नुम्' स्यात् शे परे। मुचति, मुचते। मोक्ता। मुक्षीष्ट। अमुचत, अमुक्त, अमुक्षाताम्।

व्याख्याः मुच्, लिप् (लीपना), विद् (प्राप्त करना), लुप् (लोप करना), सिच् (सींचना), कृत् (काटना), खिद् (खिन्न करना) और पिश् (पीसना) धातुओं को 'नुम्' आगम हो श प्रत्यय परे होने पर।

मुचति–मुचते–लट् में 'मुच् अ ति' और 'मुच् अ त' इस दशा में प्रकृत सूत्र से मकारोत्तरवर्ती उकार के आगे 'नुम्' आगम होने पर उसको 'नश्चापदान्तस्य झलि' से अनुस्वार ओर अनुस्वार को 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' से पर चकार का सवर्ण ञकार होकर रूप सिद्ध हुए।

'श' के परे रहते 'नुम्' का विधान होने से लट्, लोट, लङ् और विधिलिङ् में यह होता है परन्तु ध्यान रहे कि इन आठ धातुओं के उक्त लकारों के रूपों के अनुनासिकयुक्त होने से इनके रुधादिगण का होने का भ्रम होने लगता है, क्योंकि रुधादिगण[1] में श्नम् विकरण होने से अनुनासिक मिलता है। अतः इन धातुओं के तुदादिगणीय होने का विशेषरूप में ध्यान रखना चाहिये।

लिट्

ए० प्र० मुमोच, मुमुचतुः, मुमुचुः।

म० मुमोचिथ, मुमुचथुः, मुमुच।

उ० मुमोच–'मुमुच, मुमुचिव, मुमुचिम।

आ० प्र० मुमुचे, मुमुचाते, मुमुचिरे।

म० मुमुचिषे, मुमुचाथे, मुमुचिध्वे।

उ० मुमचे, मुमुचिवहे, मुमुचिमहे।

लुट् –मोक्ता। लृट्–मोक्ष्यति, मोक्ष्यते। लोट्–मुचतु, मुचताम्।

लङ्–अमुचत। विधिलिङ्–मुचेत्, मुचेत।

मुक्षीष्ट– आशीर्लिङ् में लिङ्सिचावात्मनेपदेषु से सीयुट् के कित् होने से गुण नहीं होता, चकार को कुत्व ककार और सकार को मूर्धन्य षकार रूप बनता है।

अमुचत्– लुङ् परस्मैपद में लृदित होने से च्लि को 'पुषादि–द्युतादिलृदितः परस्मैपदेषु' से अङ् आदेश होकर रूप सिद्ध होता है।

अयुक्त– आत्मनेपद में सिच् होता है, उसके सकार का 'झलो झलि' से लोप हो जाता है। तब चकार को ककार होकर रूप बनता है।

अमुक्षाताम्– आताम् में झल् परे न मिलने से सिप् का लोप नहीं होता, तब चकार को कुत्व ककार और सकार को मूर्धन्य षकार तथा उनके संयोग से 'क्ष' होकर रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार– प्र० अमुक्षत।

---

१. यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि फिर इन धातुओं को रुधादिगण में ही कयों नहीं पढ़ा गया, इस प्रकार नुम् करने का प्रयास भी न करना पड़ता। इस का उत्तर यह है कि स्वर में भेद पड़ता है।

म० अमुक्थाः,अमुक्षाथाम्, अमुग्ध्वम्।

उ० अमुक्षि, अमुक्ष्वहि, अमुक्ष्महि–

ये रूप भी सिद्ध होते हैं।

ऌङ्–अमोक्ष्यत्, अमोक्ष्यत।

लुप्ऌ छेदने 7

लुम्पति, लुम्पते। लोप्ता। अलुपत, अलुप्त।

व्याख्याः लुप् (लोप करना)–लुप् भी अनिट् है और मुचादियों में होने से इसे श परे रहे नुम् भी होता है। लदित् होने से लुङ् परस्मैपद में च्लि को अङ् भी होता है। इस प्रकार सर्वथा 'मुच्' के समान होने के कारण इसके रूप भी 'मुच्' के समान ही बनते हैं।

विद्ऌ लाभे 8

विन्दति, विन्दते। विवेद, विविदे। व्याघ्रभूतिमते सेट्-वेदिता। भाष्यमतेनिट्-परिवेत्ता।

व्याख्याः विद् (प्राप्त करना)– इस धातु के भी रूप मुच् के समान बनते हैं–क्योंकि यह उभयपदी भी है, ऌदित् भी है। भाष्यकार के मत से यह अनिट् है। व्याघ्रभूति आचार्य के मत से अनुदात्तापदेश धातुओं में पाठ होने से यह सेट् भी है। कहा भी है–

'विन्दतिश्चान्द्रदौर्गादेरिष्टो भाष्येपि दश्यते।

वयाधूभूत्यादयस्त्वेनं नेह पेठुरिति स्थितम्।।'

अर्थात् तुदादिगण का विन्द् धातु, चन्द्र और दुर्ग आचार्य के मत से अनुदात्तोपदेश धातुओं में है, भाष्य में भी ऐसा ही मिलता है। परन्तु व्याघ्रभूति आदि आचार्यों ने इसे यहाँ अर्थात् अनुदात्तोपदेश धातुओं में नहीं पढ़ा।

अतः पूर्वोक्त मतभेद के कारण इसको इट् विकल्प होगा।

वेदिता–तास् में व्याध्रभूति के मत से इट् होकर रूप बना है।

परिवेत्ता– यह तच् का रूप है। यहाँ वलादि आर्धधातुक तच् को भाष्यकार के मत में इट् नहीं हुआ। परि का अर्थ यहाँ 'वर्जन' है। ज्येष्ठ भ्राता के विवाह होने के पहले ही जो कनिष्ठ भ्राता का विवाह कर लेता है, उसे 'परिवेत्ता' कहा जाता है।

षिच क्षरणे 9

सिचते।

व्याख्याः सिच् (सींचना अनिट्)– यह षोपदेश धातु है, अतः इण् से पर इसके सकार को आदेश रूप होने से मूर्धन्य षकार हो जाता है।

सिचति–लट् परस्मैद प्र पु. ए. व. तिप में 'सिच्+ति' इस स्थिति में श होने पर मुचादि होने के कारण 'शे मुचादीनाम्' सूत्र से नुम् आगम हुआ। नुम् के उम् का लोप होने पर नकार को अनुस्वार ओर उसको परसवर्ण मकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

सिचते–लट् आ. प.प्र. पु. ए. व. में पूर्वोक्त प्रकार से रूप सिद्ध हुआ।

लिट् प०

प्र० सिषेच, सिषिचतुः, सिषिचुः।

म० सिषेचिथ, सिषिचथुः, सिषिच।

उ० सिषेच सिषिचिव, सिषिचिम।

आ० प्र० सिषिचेचे, सिषिचाते, सिषिचिरे।

म० सिषिचिषे सिषिचाथे सिषिचिध्वे।

उ० सिषिचे, सिषिचिवहे, सिषिचिमहे।

यहाँ वलादि प्रत्ययों का क्रादिनियम से नित्य इट् हुआ है।

लुट्–सेक्ता। लृट्–सेक्ष्यति, सेक्ष्यते। लोट्–सिचतु, सिचताम्।

लङ् ' असिचत्, असिचत। वि. लि. – सि़चेत्, सिचेत। आ.लि. – सिच्यात्, सिक्षीष्ट।

लिपि सिचि ह्वश्च 3.1.53

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्। असिचत्।

व्याख्याः लिप्, सिच् और ह्वेञ् (स्पर्धा करना) धातुओं से परे च्लि को अङ् आदेश होता है। इसलिए अ सिच् अत् अर्थात् असिचत् रूप बना। इसी प्रकार लुङ् परस्पैपद के अन्य रूप बनेंगे।

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् 3.1.54

लिपि सिचिह्वः परस्य च्लेरङ् वा तङि। असिचत, असिक्त।

व्याख्याः आत्मनेपद प्रत्यय परे रहते पूर्वोक्त तीनों धातुओं से परे च्लि को अङ् आदेश विकल्प से होता है।

अङ् आदेश होने से असिचत, सिचेताम्, असिचन्त आदि रूप बनते हैं। अङ् के अभावपक्ष में असिक्त, असिक्षाताम्, असिक्षत आदि रूप बनते हैं।

इसी प्रकार लिप उपदेहे (लीपना), धातु के रूप बनते हैं।

कृती द्वेदने (काटना), खिद् परिघाते (दुःखी होना), पिश् (पीसना) परस्मैपदी धातुओं के रूप पूर्वोक्त प्रक्रिया से बनते हैं।

ओव्रश्चू छेदने 14

वश्चति। वव्रश्च। वव्रश्चिथ, वव्रष्ट। व्रश्चिता, व्रष्टा। व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति। वश्च्यात्। अव्रश्चीत्, अव्राक्षीत्।

व्याख्याः ओव्रश्चू (काटना) परस्मैपदी धातु है। ओकार और ऊकार इत्संज्ञक हैं। व्रश्च् शेष रहता है। ऊदित होने के कारण वेट् है।

वश्चति : – लट् लकार में ग्रहिज्या .... से र को सम्प्रसारण ऋ होकर रूप बनता है।

वव्रश्चः – वश्च् + णल् = इस अवस्था में द्वित्व और अभ्यास को लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् से सम्प्रसारण, पूर्णरूप, उरत् से अर् और हलादिशेष होकर रूप बना।

वव्रश्चतुः –' अतुस् में 'वव्रश्च' की प्रक्रिया से रूप सिद्ध होता है।

यहाँ संयोग से पर होने के कारण 'अतुस्' कित् नहीं, क्योंकि किद्विधायक सूत्र 'असंयोगाद् लिट् कित्' असंयोग से परे ही विधान करता है। अतः यहाँ 'ग्रहिज्या–' से सम्प्रसारण नहीं होता।

वव्रष्ठ– थल् में ऊदित् होने से वैकल्पिक इट् होता है। इट् अभावपक्ष का यह रूप है। 'वव्रश्च थ' इस दशा में सकार का संयोगादि लोप, चकार को 'व्रश्च–' आदि से षकार और थकारको ष्टुत्व ठकार होकर रूप सिद्ध होता है।

वव्रश्चिव, वव्रश्चिम– यहाँ 'व' 'म' को ऊदित् होने से 'स्वरति–सूति सूयति–धू–ऊदितो वा' इस सूत्र से प्राप्त 'इट्' विकल्प को बाधकर क्रादिनियम से नित्य इट् होता है।

व्रश्चिता–लुट में इट् होने पर यह रूप बनता है।

व्रष्टा–इट् के अभावपक्ष में सकार का संयोगादिलोप और चकार को षकार तथा तकोर को ष्टुत्व टकार होकर रूप बनता है।

व्रक्ष्यति–जब 'स्य' को इट् नहीं हुआ। तब 'व्रश्च् स्यति' इस दशा में सकार का संयोगादि लोप, चकार को षकार, उसको ककार, स्य के सकार को मूर्धन्य षकार तथा क ष मिलकर क्ष बनने पर रूप सिद्ध होता है।

लोट्-वश्चतु । लङ्–अवश्चत्। वि०लि० वश्चेत्।

वश्च्यात् –आशीर्लिङ् में 'किदाशिषि' से यासुट् के कित् होने से उसके परे रहते 'ग्रहिज्या–' से सम्प्रसारण होकर रूप सिद्ध हुआ।

लुङ् (इट् पक्ष में)

प्र० अव्रश्चीत, अव्रश्चिष्टाम्, अव्रश्चिषुः।

म० अव्रश्चीः, अवश्चिष्टम, अव्रश्चिष्ट।

उ० अव्रश्चिषम्, अव्रश्चिष्व, अव्रश्चिष्म।

इट् के अभाव में–

प्र० अव्राक्षीत्, अव्राष्टाम्, अव्राक्षुः

म० अव्राक्षीः, अव्राष्टम्, अव्राष्ट

उ० अव्राक्षम्, अव्राक्ष्व, अव्राक्ष्म

यहाँ हलन्तलक्षणा वद्धि, चकार को षकार, ताम्, तम् और त को छोड़कर अन्यत्र षकार को ककार, सिच् के सकार को मूर्धन्य षकार–ये कार्य होते हैं।

उपर्युक्त तीन स्थलों में धातु के सकारका संयोगादि और सिच् के सकार का 'झलो झलि' से लोप होने पर चकार को षकार और तकार की ष्टुत्व टकार होता है।

लृङ्–अव्रश्चिष्यत, अव्रक्ष्यत्।

व्यच् व्याजीकरणे 15

विचति। विव्याच।विविचतुः। व्यचिता। व्यचिष्यति। विच्यात्। अव्याचीत्। अव्यचीत्। 'व्यचेःकुटादित्वमनसि' इति तु नेह प्रवर्तते। अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात्।

व्याख्याः (ठगना)– यह धातु सेट् है।

विचति–लट् में 'व्यच् अ ति' इस दशा में 'ग्रहिज्या–' सूत्र से संप्रसारण होने पर अकार का पूर्वरूप होकर रूप सिद्ध हुआ।

'ग्रह' आदि धातुओं में इसका पाठ होने से कित् और ङित् प्रत्यय परे रहते सम्प्रसारण होता है। 'श' अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वत् है, अतः लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में पूर्वोक्त सम्प्रसारण कार्य होकर रूप बनते हैं।

विव्याच–लिट् के प्र. पु. ए. व. णल् में द्वित्व होने पर 'व्य व्यच् अ' इस स्थिति में 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' सूत्र से अभ्यास को सम्प्रसारण होकर रूप सिद्ध होता है।

विविचतुः– अतुस् में द्वित्व से पूर्व सम्प्रसारण होने पर 'विच्' को द्वित्व होता है और तब अभ्यास के चकार का हलादि शेष लोप होकर रूप सिद्ध होता है।

कित्लिट् में सर्वत्र सम्प्रसारण द्वित्व से पूर्व होता है।

लिट् के शेष रूप–

प्र० विविचुः।

म० विव्यचिथ, विविचथुः, विविच।

उ० विव्याच–विव्यच, विविचिव, विविचिम।

---

१. पर्युदास और प्रसज्य भेद से ना् दो प्रकार का है। पर्युदास सदश का ग्रहण करता है। प्रसज्य ना् अभाव का बोध कराता है–'इह भूतले घटो इति। सर्वथा निषेध प्रसज्य के स्थल में हाता है।

व्यचिता–लुट् में धातु के सेट् होने से 'इट्' होकर रूप सिद्ध होता है।

व्यचिष्यति–लृट् में भी इट् होकर रूप बनता है।

लोट्-विचतु। लङ् अविचत्। विधिलिङ्–विचेत। विच्यात्–आशीर्लिङ् में 'किदाशिषि' से यासुट् के कित् होने से सम्प्रसारण होकर रूप बनता है।

अव्याचीत, अव्यचीत्–लुङ् में सिच् को इट् और अपक्त प्रत्यय को ईट् होने पर 'अयच् इ च ईत्' इस दश में 'इ ईटि' से सिच् का लोप हो हो जाता है हलन्तलक्षणा वद्धि का 'नेटि' से निषेध होने पर 'अतो हलादेर्लधोः' से वैकल्पिक वद्धि होकर दो रूप सिद्ध होते हैं।

व्यचेरिति–व्यच् धातु को कुटादिगण में समझना चाहिये अस्भिन्न प्रत्यय परे रहते। यह वार्विक अस्भिन्न सिच् आदि प्रत्यय के स्थल में प्रवत्त नहीं होता। क्योंकि 'अनसि' में ना् [1] पर्युदासार्थक है। अतः इसका विषय केवल कृत् प्रत्यय है। इस कारण सिच् आदि के स्थल में यह कुटादि–गणीय नहीं होता। पर्युदास के स्थल में तद्भिन्न तत्सदश अर्थ लिया जाता है, जैसे 'अब्राह्मणमानय' ऐसा कहे जाने पर ब्राह्मणभिन्न परन्तु ब्राह्मणसदश क्षत्रिय आदि लाया जाता है न कि ब्राह्मणभिन्न पत्थर आदि। ब्राह्मण भिन्न ब्राह्मणसदश को लाने में ही वहाँ वक्ता का तात्यर्य तथा शब्द की शक्ति रहती है। इसी प्रकार यहाँ भी अनसि' अस्–भिन्न अस्सद्श अर्थात् कृत्प्रत्यय परे रहते व्यच् धातु कुटादि समझी जायगी। सिच् प्रत्यय कृत् नहीं है, अतः यहाँ कुटादित्व धातु को नहीं होता। अन्यथा कुटादि होने पर 'गाङ् कुटादिभ्योणिन् ङित्' से सिच् आदि ङित् हो जाता और तब वद्धि न हो सकती और 'व्यचिता' तथा 'व्यचिष्यति' आदि स्थल में सम्प्रसारण होने लगता।

उछि उछे 16

उछति। 'उछः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इति यादवः।

व्याख्याः (उछ वत्ति से निर्वाह करना)–यह धातु इदित् है, अतः नुम् होकर 'उछ' बन जाता है। यह धातु सेट् भी है।

लिट् –उच्छाचकार। नुम् होने से संयोग बन जाने पर उससे पूर्व उकार को गुण हो जाता है तब इजादि गुरुमान् होने से आम् होकर 'कृ' आदि का अनुप्रयोग होता है।

लुट्–उछिता। लृट्–उछिष्यति। लोट्–उछतु। लङ् औछत्। वि० लि० –उछेत। आ० लि०– उछ्यात। इदित् होने से नुम् का लोप नहीं हुआ।

लुङ्–औछीत। लृङ् औछिष्यत।

उछ इति–कण कण को लेना उछ है और कनियों का संग्रह करना शिल कहा जाता है। यह वचन यादव कोष का है।

ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलय-मूर्तिभाावेषु 17

ऋच्छति। ऋच्छत्यृतामिति गुणः, द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट्-आनर्च्छ, आनर्च्छतुः। ऋच्छिता।

व्याख्याः ऋच्छ (जाना, इन्द्रियों का नाश तथा निश्चेष्ट बन जाना) यह धातु सेट् है।

ऋच्छत्यृतामिति–लिट् के प्रथमपुरुष एकवचन णल् में ऋच्छ– अ' इस स्थिति में 'ऋच्छत्यृताम्' इस सूत्र से ऋकार को गुण 'अर्' हुआ।

द्विहल इति–'तत्सान्नुङ् द्विहलः' सूत्रमें 'द्विहल्' का उपादान एक से अधिक हल को बताने के लिये है अर्थात् एक हल् न होना चाहिये, एक से अधिक होने चाहिये, चाहे दो हों या तीन, केवल दो होना जरूरी नहीं। अत 'र् च् छ' इन तीन हलों के कारण 'अर्च्छ् अ' इस दशा में भी नुट् आगम् हो गया।

आनर्च्छ–'अर्च्छ् अ' इस दशा में द्वित्व और अभ्यासकार्य होने पर नुट् आगम होने पर रूप बना।

'इजादेश्च गुरुमतोनच्छः'– इस सूत्र में 'अनच्छः' इस शब्द के द्वारा ऋच्छ धातु का निषेध होने से इजादि गुरुमान् होने पर भी 'आम्' नहीं हुआ।

आनर्च्छतुः–प्रथमपुरुष के द्विवचन अतुस् में 'ऋच्छत्यृताम्' से ऋकार को गुण 'अर्' करनेपर द्वित्व, अभ्यासकार्य,

नट् आगम होने पर रूप सिद्ध हुआ।

ऋच्छिता– लुट् प्रथमपुरुष एकवचन में 'ऋच्छ्+ता' इस स्थिति में वलादिलक्षण इट् होने पर रूप बना।

लृट–ऋच्छिष्यति। लोट्–ऋच्छतु। लङ्–आर्च्छत्। विधिलिङ्–ऋच्छेत। आ० लि०–ऋच्छ् यात्। लुङ्–आर्च्छीत्, आर्च्छिटाम, अर्च्छिषुः इत्यादि।

उज्झ उत्सर्गे 18

उज्झति।

व्याख्याः उज्झ–(छोड़ना)–सेट्। लिट–उज्झाचकार। लट्–उज्झिता। लृट् उज्झिष्यति। लुङ् –औज्झीत्।

लुभ विमोहने 19

लुभति।

व्याख्याः लुभ– (मोहित होना अर्थात् लोभ करना)–सेट्।

तीष (ति-इष)-सह-लुभ-रुष-रिषः 7.2.48

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात्। लोभिता, लोब्धा। लोभिष्यति।

व्याख्याः इष, सह, लुभ, रुष और रिष् धातुओं से परे तकारादि आर्धधातुक को इट् आगम विकल्प से हो।

लोभिता, लोब्धा–'लुभ् ता' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से तकारादि आर्धधातुक 'ता' के लुभ धातु से परे होने के कारण विकल्प से इट् आगम हुआ। इट् आगमपक्ष में गुण होने पर 'लोभिता' रूप बना और अभावपक्ष में 'लुभ–ता' इस स्थिति में 'झषस्तथोर्धोधः' सूत्र से तकार को धकार हुआ तब पूर्व पकार को जश बकार होने पर 'लोब्धा' रूप सिद्ध हुआ।

लोभिष्यति–लृट् में इट् नित्य हुआ। लुङ् –अलोभीत्।

तप तम्फ तप्तौ 20 21

तपति। ततर्प। तर्पिता। अतर्पीत्।

व्याख्याः तप तम्फ (तप्ति करना) सेट् धातु है। अतर्पीत् लुङ्, अट्, तिप, च्लि, सिच्, इट्, ईट, सिच्लोप गुण आदि कार्य होने पर यह रूप सिद्ध हुआ।

तम्फति– तम्फ, धातु के लट् प्रथमपुरुष एकवचन में शकार विकरण के अपित् सार्वधातुक होने के कारण 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' सूत्र से नकार का लोप हुआ। तब आगे आनेवाल 'शे तम्फादीनाम्–' इस वार्तिक से नुम् आगम, नकार को 'नश्चापदान्तस्य झलि' इस सूत्र से अनुस्वार और उसे 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' मकार होने पर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) शे तम्फादीनां नुम्वाच्यः।

आदिशब्दः प्रकारे, तेन येत्र नकारानुषक्तास्ते तम्फादयः। ततम्फ। तम्फ्यात्।

व्याख्याः (वा) शे तम्फादीनामिति–तम्म्फ् आदि (सदश) धातुओं को नुम् आगम होता है।

आदिशब्द इति–'शे तम्फादीनाम्' में आदि शब्द प्रकार अर्थात् सा अर्थ में है। इसलिये इस प्रकरण में जिन धातुओं के साथ नकार जुड़ा हो वे सब तम्फादि समझने चाहिये।

तफ्यात्–आशीर्लिङ् में यासुट् के कित् होने के कारण 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' से नकार [१] का लोप हुआ।

---

१. कदाचित् यह कोई कहे कि यहाँ नकार नहीं अपि तु मकार है फिर 'शे तम्फादीनाम्' की प्रवत्ति कैसे हो सकती है। इसके उत्तर में यह समझना चाहिये कि यह नकार है उसी को अनुसवार और परसवर्ण मकार हुआ है। 'अनिदितां हलः–' की दष्टि में अनुस्वार और परसवर्ण असिद्ध कहा है– नकारजावनुस्वारपंचमौ झलि धातुषु। सकारजः शकरश्च षाट्ठवर्गास्तवर्गजः।

मड पड सुखने 22.23

मडति। पडति।

व्याख्याः मड्, पड् (सुख देना)–सेट्। लिट्–ममर्ड, पपर्ह। लुङ् –अमर्डीत, अपर्डीत्।

शुन गतौ 24

शुनति।

व्याख्याः शुन् (जाना–सेट्)। लिट्–शुशोन। लुट् शोनिता। लृट्– शोनिष्यति। लोट्–शुनतु। लङ्–अशुनत्। वि० लि०–शुनेत्। आ० लि०– शुन्यात्। लुङ्–अशोनीत्। लृङ् –अशोनिष्यत्।

इषु इच्छायाम् 25

इच्छति। एषिता, एष्टा। एषिष्यति। इष्यात्। ऐषीत्।

व्याख्याः (इच्छा करना)–सेट्

इच्छति–'इष् –अ ति' इस स्थिति में। 'इषुगमियमां छः' इस सूत्र से षकार को छकार होने पर रूप बन गया।

लिट्–इयेष, ईषतुः, ईषुः।

एषिता, एष्टा–'इष्–ता' इस दशा में 'तीषसह–' इत्यादि सूत्र से तकारादि आर्धधातुक को इट् विकल्प से होने के कारण उक्त दो रूप बने। इट् के अभावपक्ष में इकार को गुण होने के साथ तकार को ष्टुत्व हुआ।

लोट्–इच्छतु लुङ्–ऐच्छत्। वि० लि० इच्छेत।

ऐषीत्– लुङ्, आट्, वद्धि, तिप, च्लि, सिच्, इट्, ईट्, और सिच् के लोप होने से रूप बना।

शेष रूप –ऐषिष्टाम्, ऐषिशुः। ऐषीः, ऐषिष्टम्, ऐषिष्ट। ऐषिषम, ऐषिष्व, ऐषिष्म।

कुट कौटिल्ये 26

गाङ्कुटादीति ङित्त्वम्-चुकुटिथ। चुकुट। कुटिता।

व्याख्याः कुट् (कुटिलता करना)–सेट्। लट्–कुटति,कुटतः, कुटन्ति। लिट्–चुकोट, चुकुटतुः, चुकुटुः।

चुकुटिथ–थल् में द्वित्व, अभ्यासकार्य तथा थल् को इट् आगम होने पर 'गाङ्कुटादिभ्योणित् ङित' इस सूत्र से पूर्ववत् 'ता' ङित् हुआ और तब 'क्ङिति च' सूत्र से गुण का निषेध हो गया।

लृट्–कुटिष्यति। लोट्–कुटतु। लङ्–अकुटत। वि० लि०–कुटेत। आ० लि०–कुट्यात। लुङ्–अकुटीत्। लृङ्–अकुटिष्यत|

पुट संश्लेषणे 27

पुटति। पुटिता।

व्याख्याः पुट् (जोड़ना)–सेट्।

पुटिता–कुटादि होने से यहाँ भी 'ता' ङित् होता है और तब गुण का निषेध हो जाता है।

स्फुट विकसने 28

स्फुटति। स्फुटिता।

व्याख्याः स्फुट् (खिलना)–सेट्। यह धातु भी कुटादि है, इसके रूप 'कुट' के समान ही बनते हैं।

स्फुर स्फुल संचलने 29-30

स्फुरति। स्फुलति।

व्याख्याः स्फुर, स्फुल् (चेष्टा करना, हिलना–डुलना, हरकत करना)।

स्फुरति-स्फुलत्योर्निर्निविभ्यः 8.3.76

षत्वं वा स्यात्। निष्फुरति, निस्फुलति।

व्याख्याः स्फुरतीति–निर्, नि और वि उपसर्गों से पर सेट् स्फुर और स्फुल् धातुओं के सकार को षकार विकल्प से होता है।

निष्फुरति, निष्फुलति–यहाँ 'नि' उपसर्ग से परे होने के कारण धातु के सकार को मूर्धन्य षकार विकल्प से हुआ। अभावपक्ष में –निस्फुरति, निस्फुलति ऐसे ही रूप रहेंगे।

लिट्–पुस्फोल। लुट्–स्फुलिता। लोट्–स्फुरतु, स्फुलतु। लङ्–अस्फुरत्। वि० लि० –स्फुरेत्, स्फुलेत्। आ० लि०–स्फुर्यात्, स्फुल्यात्। लुङ्–अस्फुरीत्, अस्फुलीत।

णू स्तवने 32 'परिणूतगुणोदयः'.

नुवति। नुविता।

व्याख्याः णू (स्तुति करना)– सेट्। यह धातु दीर्घ ऊकारान्त है।

परितेति–'परिणूतः प्रशस्तः गुणानामुदयो यस्य' अर्थात् जिसके गुण प्रशंसनीय हैं।

यह काव्य का उद्धरण इस धातु के दीर्घ ऊकारान्त होने के फल रूप में दिया गया है अर्थात् दीर्घ ऊकारान्त होने का फल का प्रत्यय हो। यह इस काव्योद्धरण से सिद्ध किया गया है।

तात्पर्य यह है कि तुदादिगण के विकरण श के ङिद्वत् होने से सार्वधातुक लकारों में गुण का निषेध होने से ऊकार को उवङ् आदेश हो जाता है और आर्धधातुक लकारों में भी इट् होने पर कुटादि होने के कारण ङिद्वद्भाव हो जाने से उवङ् हो जाता है, लुङ् में ऊकार की इगन्तलक्षणा वद्धि हो जाती है। ये सब कार्य ह्रस्व उकार को भी हो सकते हैं, रूप में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता, इसलिये धातु के दीर्घ ऊकारान्त होने का कोई प्रयोजन यहाँ नहीं मालूम पड़ता, इसके समाधान के रूप में 'परिणूत' यह क्त प्रत्यय का रूप दिया गया है अर्थात् यहाँ प्रत्यय होने पर उवङ् आदि कार्य नहीं होता, अतः यहाँ ऊकार का श्रवण होता है। यदि धातु ह्रस्व उकारान्त हो तो यहाँ दोष होगा।

यदि यह कहा जाय कि दीर्घ ऊकारान्त होने से 'ऊददन्तै–' के नियम से यह धातु सेट् है। अतः यहाँ भी इट् होने से उवङ् आदेश होगा। फिर दीर्घ ऊकार का कोई प्रयोजन नहीं। इसका समाधान यह है कि यहाँ 'श्र्युकः किति' सूत्र से इट् का निषेध हो जाता है। इसलिये इट न होने से यहाँ उवङ् भी नहीं होता और तब दीर्घ ऊकार का श्रवण होता है। इस प्रकार धातु का दीर्घ ऊकारान्त होना निष्फल नहीं।

नुवति– लट् के प्रथमपुरुष एकवचन तिप् में विकरण श के आने पर अपित् सार्वधातुक होने से 'सार्वधातुकमपित्' सूत्र से ङिद्वत् हो जाने के कारण गुण का निषेध हो जाता है। तब 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' सूत्र से ऊकार को उवङ् आदेश होने पर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

नुनाव–लिट् प्रथमपुरुष एकवचन णल् में द्वित्व, अभ्यास को ह्रस्व और उत्तर खण्ड के अकार को 'अचो ञ्णिति' से वद्धि औकार और उसे 'आव्' आदेश होने पर उक्त रूप बना।

नुविता– लुट् के प्रथम पुरुष एकवचन में इट् हुआ। कुटादि होने से इडादि प्रत्यय ङिद्वत हो गया। तब गुण का निषेध होने से 'उवङ्' आदेश होने पर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

लृट्–नुविस्यति। लोट्–नुवतु। लङ्–अनुवत्। विधिलिङ्–नुवेत्। आशीर्लिङ्–नूयात। लुङ्–अनावीत्। लृङ्–अनुविष्यत्।

टुमस्जो शुद्धौ 32

मज्जति। ममज्ज। 'मस्जि-नशो' निति नुम्।

व्याख्याः टुमस्जो (शुद्ध करना अर्थात् स्नान)– यह धातु अनिट् है। 'टु' इसका इत् है, उसका फल है 'ट्वितोथुच्' से अथुच्

प्रत्यय होकर 'मज्जथुः' शब्द की सिद्धि। ओदित् होने से निष्ठा के तकार को नकार हो जाता है। अतः क्त प्रत्यय में 'मग्नः' और क्तवतु में 'मग्नवान्' प्रयोग बनते हैं।

मज्जति–लट् प्रथम पुरुष एकवचन पित् में 'मस्ज् अति' इस स्थिति में पहले 'स्तोः श्चुना श्चुः' इस सूत्र से सकार के स्थान में शकार हुआ, तब उस के स्थान में 'झलां जश् झशि' सूत्र से जश् जकार हाने पर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

ममज्ज–लिट् प्रथमपुरुष के एकवचन णल् में द्वित्व, अभ्यासकार्य हाने के साथ पूर्ववत् सकार को पहले शकार हुआ और तब उसे जश् जकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

मस्जिनशोरिति–थल् में जब इट् नहीं हुआ तब झलादि प्रत्यय होने से 'मस्जिनशोर्झलि' इस सूत्र से नुम् आगम हुआ।

(वा) मस्जेरन्त्यात् पूर्वो नुम् वाच्यः।

संयोगादिलोपः-ममङ्क्थ,। ममज्जिथ। मङ्क्ता। मङक्ष्यति। अमाङ्क्षीत्, अमाङ्क्षुः।

व्याख्याः मस्ज् धातु में अन्त्य वर्ण से पूर्व नुम् कहना चाहिये।

बात यह है कि मित् नुम् आदि आगम 'मिदचोन्त्यात्परः' इस नियम से अन्त्य अच् के आगे होते हैं। यहाँ 'मस्ज' धातु में अन्त्य अच् मकारोत्तवर्ती अकार है उसके आगे अर्थात् सकार के पूर्व नुम प्राप्त होता है। सकार के पूर्व नुम् होने पर संयोग का आदि नुम् का नकार होता है सकार नहीं, तब 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' से होनेवाला संयोग के आदि सकार का लोप यहाँ नहीं हो पाता। जब अन्त्य वर्ण से पूर्व नुम् आगम प्रकृत वार्तिक से होता है तब वह जकार से पूर्व होता है और सकार के बाद। 'मस् न् ज्' यह स्थिति बनती है यहाँ संयोग का आदि होने से तकार का लोप सिद्ध होता है।

संयोगादिलोप इति–'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इस सूत्र से 'स्न्' इस संयोग के आदि सकार का लोप 'म मस् न् ज् थ' इस स्थिति में हुआ।

मङक्थ–लिट् मध्यपुरुष एकवचन थल् में इट् के अभावपक्ष में द्वित्व, अभ्यासकार्य, नुम्, पूर्वोक्त प्रकार से सकार का लोप, जकार का कवर्ग गकार उसको चर् ककार, नकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण ङकार होने पर रूप सिद्ध होता है।

ममज्जिथ–तास् में नित्य अनिट् होते हुए अकारावान् होने से थल में भारद्वाजनियम से विकल्प से इट् होता है। यह इट् पक्ष का रूप है।

मङ्क्ता–लुट् प्रथमपुरुष के एकवचन में झलादि प्रत्यय को पूर्वोक्त प्रकार से नुम् अन्त्य वर्ण जकार से पूर्व हुआ। तब 'स्न्' इस संयोग के आदि सकार का लोप, जकार, को कुत्व गकार, उसको चर, ककार, नकार को अनुस्वार, उसको परसवर्ण ङ्कार होकर रूप सिद्ध होता है।

मङक्ष्यति–ऌट् प्रथमपुरुष एकवचन में 'मस्ज्+स्यति' ऐसी स्थति में 'मस्जिनशोर्झलि' से नुम् आगम 'अन्त्यात्पूर्वो नुम् वाच्यः' नियम से जकार के पूर्व हुआ। तब 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च इस सूत्र से सकार का लोप होने पर जकार को कवर्ग गकार और उसको चर् ककार हुआ। तदनन्तर सकार को मूर्धन्य षकार और नकार को अनुस्वार परसवर्ण ङकार होकर रूप बन गया।

अमाङ्क्षीत्–लुङ्, अट्, वि, च्लि, सिच्, नुम्, सलोप, वद्धि, कुत्व,चरत्व, षत्व, नकार को अनुस्वार और परसवर्ण ङकार होने पर रूप सिद्ध हुआ।

अमाङ्क्ताम्–लुङ् प्रथमपुरुष के द्विवचन में सारे कार्य पूर्ववत् होते हैं। केवल 'झलो झलि' सूत्र से सिच् से सिच् का लोप होता है।

अमाङ्क्षुः– यह लुङ प्रथम पुरुष के बहुवचन का रूप है। 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' सूत्र से 'झि' को जुस् हो गया। शेष कार्य 'अमाङ्क्षीत्' के समान बनते हैं।

शेष रूप– अमाङ्क्षीः, अमाङ्क्त। अमाङ्क्षम्, अमाङक्ष्व, अमाङ्क्ष्म।

रुजो भङ्गे 33

रुजति ।रोक्ता। रोक्ष्यति। अरोक्षीत्।

व्याख्याः रुज् (तोड़ना)–अनिट्, ओदित्। ओदित होने का फल निष्ठा के तकार को नकार होना है। जैसे –रुग्णः। रोग से कष्ट पहुँचाने अर्थ में इसका प्रयोग होता है। जैसे–विपादिका रुजति–बेवाई दुःख देती है। रोग इसी से बनता है।

रोक्ता– लुट् प्रथमपुरुष एकवचन में 'रुज्+ता' इस स्थिति में लधूपध गुण और जकार को कुत्व गकार और चर् ककार होने पर रूप सिद्ध हो गया।

रोक्ष्यति–लट् प्रथमपुरुष एकवचन में 'रुज्+स्यति' इस दिशा में गुण, जकार को कुत्व गकार, गकार को चर् ककार, सकार को मूर्धन्य षकार और क ष के संयोग से क्ष बनकर रूप बना।

अरौक्षीत्–लुङ् प्रथमपुरुष एकवचन में अट्, तिप्, सिच्, उकार को हलन्तलक्षण वद्धि, जकार को कुत्व गकार, गकार को चर् ककार, सकार को षकार, क ष के संयोग से क्ष होने पर रूप सिद्ध हुआ।

शेष रूप–

अरौक्ताम्, अरौक्षुः।

अरौक्षीः, अरौक्तम्, अरौक्त।

अरौक्षम्, अरौक्ष्व, अरौक्ष्म।

भुजो कौटिल्ये 34

रुजिवत्।

व्याख्याः (कुटिल होना)–अनिट्। ओदित्–भुग्नः। मोड़ने अर्थ में इसका प्रयोग होता है। इसके रूप 'रुज्' के समान ही बनते हैं।

विश प्रवेशने 35

विशति।

व्याख्याः विश् (घुसना)–अनिट्। लट्–विशति। लिट्–विवेश। लुट्–वेष्टा। श्ट्–वेक्ष्यति। लोट्–विशतु। लङ्–अविशत्।
वि० लि०–विशेत्। आ० लि–विश्यात्। लुङ्–अविक्षत्। ऌङ– अवेक्ष्यत

उपसर्गों के योग में–

प्रविशति–प्रवेश करता है।उपविशति –बैठता है।

निविशते[१]– चुभता है।अभिनिविशते–मन लगाता है।

मश आमर्शने 36

आमर्शनम्-स्पर्श। अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्-अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत्, अमक्षत्।

व्याख्याः मश (स्पर्श करना)–अनिट्।

आमर्शनम् इति–आमर्शन स्पर्श को कहते हैं।

मश्धातु का अर्थ निर्देश किया गया है 'आमर्शने'। आमर्शन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये यह वाक्य कहा गया है।

हिन्दी में इस का अर्थ होगा–मलना या हाथ फेरना, जैसे–मुखम्, आमशति–मुख पर हाथ फेरता है। नेत्रे आमश्य–आँख मलकर।

---

१. निपूर्वक 'विश' धातु से 'नेर्विशः' सूत्र से आत्मनेपद आता है। श्रीहर्ष ने नैषध में कहा है–'निविशते यदि शूकाशिखा पदे'।

लट्–मशति। लिट्–ममर्श। लुट्–मर्ष्टा। लृट्–मर्क्ष्यति। लोट्–मशतु। लङ्–अमशत्। वि० लि०–मशेत्। आ० लि०–मश्यात्।

अम्राक्षीत्–लुङ् प्रथमपुरुष एकवचन, अट्, पित्, सिच, ईट, 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्तरस्याम्' इस सूत्र से ऋकार के आगे अम् आगम, ऋकार को यण् रकार, अकार को हलन्तलक्षणा वद्धि, जकार को कुत्व गकार, गकार को चर् ककार, सकार को मूर्धन्य षकार, क ष संयोग से क्ष होकर रूप बन गया।

शेष रूप–

अम्राष्टाम्, अम्राक्षुः।

अम्राक्षीः, अम्राष्टम्, अम्राष्ट।

अम्राक्षम्, अम्राक्ष्व, अम्राक्ष्म।

अमार्क्षीत्–अम् के अभावपक्ष में सारे कार्य पूर्ववत् होते हैं केवल ऋकार को हलन्तलक्षणा वद्धि 'आर्' होती है।

शेष रूप–

अमार्ष्टाम्, अमार्क्षुः।

अमार्क्षीः, अमार्ष्टम्, अमार्ष्ट।

अमार्क्षम्, अमार्क्ष्व, अमार्क्ष्म।

अमक्षत्–'स्पशमशकृषतपदपां च्लेः सिज्वा वाच्यः' इस वार्विक से क्स को बाधकर च्लि को सिच् विकल्प से होता है। सिच्पक्ष में विकल्प से अम् होता है, ये दोनों रूप ऊपर दिखाये गये हैं। सिच् के अभावपक्ष में 'शल इगुपधादनिटः क्स– इस सूत्र से च्लि को 'क्स' आदेश होता है। क्स का सकार शेष रहता है। 'क्स' के कित् होने से वद्धि का निषेध हो जाता है। शेष कार्य कुत्व आदि पूर्ववत् होकर रूप सिद्ध होता है।

शेष रूप–

अमक्षताम्, अमक्षन्।

अमक्षः, अमक्षम्, अमक्षत।

अमक्षम्, अमक्षाव, अमक्षाम।

षद्लविशरणगत्यवसादनेषु 37

सीदति-इत्यादि।

व्याख्याः षद्ऌ (फटना, जाना, दुःखी होना)–अनिट्, ऌदित् होने से लुङ् में च्लि को अङ् होता है।

सीदति–'पाघ्राध्मा–' इत्यादि सूत्र से सार्वधातुक लकारों में 'सीद्' आदेश हो जाता है।

लिट्–ससाद, सेदतुः, सेदुः। लुङ् सत्ता। लृट्–सत्स्यति, लोट्–सीदतु। लङ्–असीदत्। वि० लि० सीदेत्। आ० लि०–सद्यात्। लुङ्– असदत्; लृङ्–असत्स्यत्।

उपसर्गों के योग में–

प्रसीदति–प्रसन्न होता है।	अवसीदति –दुःखी होता है।
निषीदति–बैठता है।	असीदति–पास पहुँचता है।
विषीदति–विषाद करता है।	प्रत्यासीदति–निकट आता है।

शद्ऌ शातने 38

व्याख्याः शद्ऌ (नाश होना)–अनिट्। लदित्।

शदेश्शितः 1.3.60

शिद्भाविनोस्मात्ताङानौ स्तः। शीयते। शीयताम्। अशीयत। शीयेत। शशाद। शत्ता। शत्स्यति। अशदत्। अशत्स्यत्।

व्याख्याः शदेश्शित इति– शद् धातु जब शिद्भावी हो अर्थात् जब उससे शित् प्रतयय होने वाला हो तो आत्मनेपद प्रत्यय आते हैं।

शीयते–लट् के प्रथमपुरुष एकवचन में 'शदेश्शितः' सूत्र से आत्मनेपद तङ् और शद् को शीय् आदेश होकर रूप बन गया।

लिट्–शशाद, शेदतुः शेदुः।

शीयताम्–लोट् में आत्मनेपद और 'शद्' को 'शीय्' आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

अशीयत्–लङ् में पूर्ववत रूप सिद्ध हुआ।

अशदत्–लुङ् में 'च्लि' को 'पुषादिद्युतादि–ऌदितः परस्मैपदेषुः' सूत्र से 'अङ्' आदेश होकर रूप बना।

कॄ विक्षेपे 31

व्याख्याः कॄ (बिखेरना)–सेट्।

ॠत इद्धातोः 7.1.100

ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात्। किरति। चकार, चकरतुः, चकरुः। करीता, करिता। कीर्यात्।

व्याख्याः ॠतु इति–दीर्घ ॠकारान्त धातु रूप अङ्ग को 'इत्' आदेश हो। 'अलोन्त्यस्य' सूत्र से 'इ' कार अङ्ग के अन्त्य ॠकार को ही होता है। ॠकार के स्थान में विधान होने से 'उरण् रपरः' सूत्रसे रपर 'इर्' आदेश होता है।

किरति–लट् प्रथमपुरुष के एकवचन में तिप्, श विकरण होने पर ''ॠत इद्धातोः सूत्र से ॠकार के स्थान में 'इर्' आदेश होकर रूप सिद्ध हो गया।

चकार–लिट् प्रथम पुरुष एकवचन णल् 'ॠच्छत्यॄताम्' से ॠकार को गुण, द्वित्व, अभ्यासकार्य, अकार को 'अत उपधायाः' से उपधा वद्धि होकर रूप सिद्ध हुआ

चकरतुः–लिट् प्रथम पुरुष द्विवचन अतुस् में 'ॠच्छत्यॄताम्' सूत्र से. ॠकार को गुण तथा अन्य कार्य यथापूर्व होकर रूप बना।

चकरुः– लिट् के प्रथमपुरुष बहुवचन उस् में पूर्ववत् कार्य होकर रूप बना।

करीता, करिता–लुट् के प्रथमपुरुष एकवचन में इट् और ॠकार को गुण अर् आदेश होने पर 'वृतो वा' इस सूत्र से इट् को विकल्प से दीर्घ होकर उक्त दो रूप बने।

कीर्यात्– आशीर्लिङ में यासुट् के कित् होने के कारण ॠत इद्धातोः' सूत्र से ॠकार को इर् आदेश और 'हलि च' सूत्र से इकार को दीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ।

लुङ्–अकारीत, अकारष्टिाम्, अकारिषुः। अकारीः, अकारिष्टम्, अकारिष्ट। अकारिषम्, अकारिष्व,अकारिष्म।

लुङ् में 'सिचि वद्धिः परस्मैपदेषु' से इगन्तलक्षणा वद्धि होती है।

किरतौ लवने 6.1.140

उपात् किरतेः सुट् छेदने। उपस्किरति।

व्याख्याः किरतौ इति–उप उपसर्ग से परे कॄ धातु को सुट् आगम होता है काटने के अर्थ में।

उपस्किरति–यहाँ उप से परे होने के कारण प्रकृत सूत्र से कॄ धातु को सुट् आगम हुआ।

(वा) अङ्-अभ्यास-व्ययायेपि सुट् कात्पूर्व इति वक्तव्यम्।

उपास्किरत्। उपचस्कार।

व्याख्या: अडभ्यासेति–अट् और अभ्यास के व्यवधान होने पर भी यथाप्राप्त सुट् आगम होता है तथा वह ककार से पूर्व ही होता है।

उपास्किरेत्–यहाँ 'उप+अकिरत्' इस दशा में उप से परे होने के कारण अट् के व्यवधान में भी ककार से पूर्व कॄ धातु को अभ्यास के व्यवधान होने पर भी ककार से पूर्व सुट् आगम हुआ।

हिंसायां प्रतेश्च 6.1.41

उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम्। उपस्किरति। प्रतिस्किरति।

व्याख्या: हिंसायमिति–उप और प्रति से पर कॄ धातु को अभ्यास के व्यवधान होने पर भी ककार से पूर्व सुट् आगम हुआ।

उपस्किरति, प्रतिस्किरति–यहाँ उपसर्ग उप ओर प्रति से परे कॄ धातु को सुट् आगम हुआ। यहाँ अर्थ हिंसा है।

गॄ निगरणे 40

व्याख्या: गॄ (निगलना)–सेट्।

अचि विभाषा 8.2.21

गिरते रेफस्य लोजादौ प्रत्यये।गिलति, गिरति। जगाल, जगार। जगलिथ, जगरिथ। गलीता, गलिता। गरीता, गरिता।

व्याख्या: अचि इति–गॄ धातु के रेफ का लकार होता है विकल्प से अजादि प्रत्यय परे रहते।

गिलति, गिरति–गॄ धातु के लट् के प्रथमपुरुष एकवचन में 'श' होने पर 'ऋत इद्धातोः' सूत्र से ऋकार को 'इर्' आदेश होता है। तब अजादि प्रत्यय श के परे होने के कारण 'अचि विभाषा' सूत्र से रेफ को लकार विकल्प से होकर दो रूप बने।

जगाल, जगार–'चकार' के समान रूप सिद्ध होता है। केवल लकार का अन्तर पड़ता है। यहाँ अजादि प्रत्यय णल् परे है।

जगलिथ, जगरिथ–यहाँ भी रूप सिद्ध 'चकरिथ' के समान होती है, यहाँ अजादि प्रत्यय 'इक' यह इट्–सहित थ है, अतः लकार विकल्प होने से दो रूप बनते हैं।

गलीता, गलिता, गरीता, गरिता–इट् के दीर्घ विकल्प और रेफ के लकार विकल्प से चार रूप बन गये।

ऌट्–गलीष्यति, गलिष्यति, गरीष्यति, गरिष्यति।

लोट्––गिलतु, गिरतु।लङ्–अगिलत्, अगिरत्। वि० लि०–गिलेत्। गिरेत्। आ० लि०–गीर्यात्,। लुङ् –अगालीत्, अगारीत्, अगालिष्टाम् अगारिष्टाम, अगालिष्ट, अगारिष्ट। ऌङ्–अगालिष्यत् अगारिष्यत् इत्यादि।

उपसर्गों के योग में–

निगिलति–निगलता है।

सगिरते[१]–प्रतीक्षा करता है।

प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् 41

'ग्रहिज्या' इति सम्प्रसारणम्-पच्छति। प्रपच्छ, पप्रच्छतुः, पप्रच्छुः। प्रष्टा। प्रक्ष्यति। अप्राक्षीत्।

व्याख्या: प्रच्छ–(जानने की इच्छा अर्थात् पूछना)–अनिट्।

पच्छति –लट् प्रथमपुरुष एकवचन णल् में द्वित्व और अभ्यासकार्य होने पर रूप बन गया।

प्रपच्छतुः, पप्रच्छुः–लिट् प्रथमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् द्वित्व और अभ्यास कार्य होने पर रूप

---

१. सम्पूर्वक गॄ धातु से प्रतिज्ञा अर्थ में 'समः प्रतिज्ञाने' इस सूत्र से आत्मनेपद होता है।

सिद्ध हुआ।

प्रष्टा– लुट, प्रथमपुरुष के एकवचन में 'प्रच्छ्+ता' इस दशा में 'व्रश्चभ्रस्ज–' सूत्र से 'च्छ' को षकार हुआ। तब तकार के स्थान में ष्टुत्व टकार होने पर रूप सिद्ध हुआ।

प्रक्ष्यति–ऌट् प्रथमपुरुष एकवचन में 'प्रच्छ–स्यति' इस स्थिति में 'च्छ' को पूर्ववत् षकार होने पर 'षढोः कः सि' इस सूत्र से उसे ककार हुआ। तब स्यके सकार को मूर्धन्य षकार होकर 'क ष' के संयोग से 'क्ष' बनकर रूप बना।

लोट्–पच्छतु। लङ्–अपच्छत्। वि० लि०– पच्छेत्। आ० लि०– पच्छ्यात।

अप्राक्षीत्–लुङ् प्रथमपुरुष एकवचन में 'अ प्रच्छ् स् ई त्' इस स्थिति में अकार को हलन्त लक्षण वद्धि से आकार आदेश, 'च्छ' को षकार और उसे ककार तथा सकार को मूर्धन्य ष होने पर क ष के संयोग से 'क्ष' बनकर रूप सिद्ध हुआ।

शेष रूप –अप्राष्टाम, अप्राक्षुः। अप्राक्षीः, अप्राष्टम, अप्राष्ट। अप्राक्षम्, अप्राक्ष्व, अप्राक्ष्म।

'अप्राष्टाम्' आदि रूपों में च्छ को षकार होने के साथ ही 'झलो झलि' से सिच् से सकार का लोप हो जाता है।

ऌङ्–अप्रक्ष्यंत्।

मङ् प्राणत्यागे 41

व्याख्याः म (मरना)–अनिट्।

म्रियतेर्लुङ्-लिङोश्च 1.3.61

लुङ्-लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मङस्तङ् नान्यत्र। रिङ्, इयङ् म्रियते। ममार। मर्ता। मरिष्यति। मषीष्ट। अमृत।

व्याख्याः म्रियतेरिति–लुङ्, लिङ् और शित् के प्रकृतिभूत अर्थात् सार्वधातुक के विषय में म धातु से तङ् होता है अन्यत्र नहीं।

इस प्रकार मङ् धतु से लट, लोट्, लङ्, वि० लिङ, आ० लिङ् और लुङ में आत्मनेपद तथा लिट्, लुट्, ऌट, ऌङ्–इन चारा लकारों में परस्मैपद रहता है।

म्रियते–लट् के प्रथमपुरुष के एकवचन में 'म अ ते' इस दशा में 'रि शयग्लिङ क्षु' इस सूत्र से 'ऋ'कार को 'रि' आदेश हुआ तब इकार को इयङ् आदेश होने पर रूप सिद्ध हुआ।

ममार–लिट् के प्रथमपुरुष एकवचन में द्वित्व अभ्यासकार्य वद्धि आदि होने पर रूप बन गया।

मरिष्यति–ऌट् के प्रथमपुरुष एकवचन में 'ऋद्धनोः स्ये' सूत्र से इट् आगम हुआ।

लोट्– म्रियताम्। लङ्–अम्रियत। वि० लिग०–म्रियेत।

मषीष्ट–अशीर्लिङ् के प्रथमपुरुष में सीयुट, सुट् होते हैं। 'उश्च १।२।१२।।' सूत्र से सीयुट् कित् हो जाता है। तब ऋकार को प्राप्त गुण का निषेध हो जाता है।

अमत–लुङ् प्रथमपुरुष एकवचन में 'ह्रस्वादङ्गात्' सूत्र से सिच् का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

शेष रूप–अमषाताम्, अमषत। अमथाः, अमषाथाम्, अमइढ्वम।अमषि, अमष्वहि,, अमष्महि।

पङ् व्यायामे 43

प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः। व्यापप्रे, व्यापप्राते। व्यापरिष्यते। व्यापत, व्यापषाताम्।

व्याख्याः पङ् (व्यापार–चेष्टा करना)–अनिट्।

प्रायेणेति–यह धातु प्रायः वि आङ् पूर्व होता है अर्थात् इसके साथ वि और आङ् उपसर्ग का प्रायः प्रयोग होता है।

व्याप्रियते–लट् के प्रथमपुरुष एकवचन में 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' इस सूत्र से ऋकार को रिङ् आदेश और पुनः इकार

को 'अचि श्नुधातुभ्रुवां–' से इयङ् आदेश होकर रूप बन गया।

व्यापप्रे–लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में 'व्या प+ए' इस दशा में द्वित्व, अभ्यासकार्य होने पर उत्तर खण्ड के ऋकार को यण् रकार होकररूप सिद्ध हुआ।

व्यापरिष्यते–ऌट् के प्रथमपुरुष एकवचन में 'ह्रस्वादङ्गात्' सूत्र से सिच् का लोप हुआ।

व्यापत–ऌङ् प्रथमपुरुष एकवचन में 'ह्रस्वादङ्गात्' सूत्र से सिच् का लोप हुआ।

व्यापषाताम्–लुङ् प्र० प्र० द्वि० व में 'व्या प+ आताम्' इस स्थिति में सिच् और उसके सकार को मर्धन्य होकर रूप बनता है।

जुषी प्रीतिसेवनयोः 44

जुषते। जुजुषे।

व्याख्याः जुष (प्रीति और सेवन)–सेट्। ईदित् होने से निष्ठा को इट् का निषेध हो जाता है–जुष्ट इत्यादि।

लट्–जुषते। लिट्–जुजुषे। लुट–जोषिता। ऌट्–जोषिष्यते। लोट्–जुषताम्। लङ्–अजुषत्। वि० लि० –जुषेत। आ० लि० जोषिषीष्ट। लुङ्–अजोषिष्ट। ऌङ् –अजोषिष्यत।

ओविजी भयचलनयोः 45

प्रायेणायमुत्पूर्वः। उद्विजते।

ओविजी (भय और काँपना)–ओदित् तथा ईदित् है। ओदित होने से निष्ठा के तकार को नकार और ईदित् होने से इट् का निषेध होता है। जैसे उद्विग्नः। सेट्।

अर्थात् इसका प्रयोग 'उत्' उपसर्ग के बिना नहीं होता।

लट्–उद्विजते। लिट्–उद्विविजे।

विज इट् 1.2.2

विजः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत्'। उद्विजिता।।इति तुदादयः।।

व्याख्याः विज इति–विज् से परे इडादि प्रत्यय ङिद्वत् होता है।

ङिद्वत् होने का फल गुण का निषेध है।

लिट्–उद्विविजे। लुट्–उद्विजिता। ऌट्–उद्विजिष्यते। लोट्–उद्विजताम्–लङ्–उद्अविजत। वि० लि०–उद्विजेत। आ० लि०–उद्विजिषीष्ट। लुङ्–उद्अविजिष्ट। लुङ्–उद्अविजिष्यत।

(तुदादिगण समाप्त)